

सैद्धान्तिक समीक्षा और आ. रामचन्द्र शुक्ल - 2

डॉ अजय कुमार बिन्द

असि. प्रो. हिंदी

राजकीय महाविद्यालय नानौता, सहारनपुर

drajaybind@gmail.com

यह रसानुभूति कैसे होती है, इस प्रश्न के स्तर में वे 'साधारणीकरण' का सिद्धान्त प्रस्तुत करते हैं- "जब तक किसी भाव का कोई विषय इस रूप में नहीं लाया जाता कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव का आलम्बन हो सके, तब तक उसमें रसोदबोधन की पूर्ण शक्ति नहीं आती। इस रूप में लाया जाना हमारे यहाँ 'साधारणीकरण' कहलाता है।"14 काव्य में विषय विशेष ही होता है और उस विषय का सहृदय के मन में आलम्बन विशेष का साधारणीकरण होता है। उन्होंने कहा है कि 'साधारणीकरण' की अवस्था में भावक देश-काल की सीमा, व्यावहारिक और कार्यकारण सम्बन्ध से परे हो जाते हैं, शुक्लजी ने कहा कि आलम्बन में मनुष्य मात्र के किसी भाव को जाग्रत करने की योग्यता होनी चाहिये। श्रृंगार में पुरुष और स्त्री एक दूसरे के आश्रय व आलम्बन हो सकते हैं। लेकिन अन्य भावों के विषय में ऐसा सम्भव नहीं है। आ. शुक्ल के अनुसार -"सर्वत्र आश्रय के क्रोध का पात्र मनुष्य मात्र के क्रोध का पात्र हो। रौद्र रस में आलम्बन का 'साधारणीकरण' पूरा तभी हो सकता है, जबकि वह क्रूरता, अन्याय, अत्याचार आदि के कारण मनुष्य मात्र के क्रोध का पात्र बनाया जा सके।"15 आचार्य शुक्ल की यह व्याख्या परम्परागत उनके समाज सापेक्ष्य काव्य चिन्तन का परिचय है। आ.शुक्ल रसानुभूति को अनिवार्यतः आनन्द नहीं मानते हैं। वे मानते हैं कि- "क्रोध, भय, जुगुप्सा तथा करुणा की वास्तविक अनुभूति दुःखात्मक होती है। उनका मत है कि करुण रस प्रधान नाटकों में दुःख का ही अनुभव होता है। हृदय की मुक्त दशा में होने के कारण वह रसात्मक होता है।"16 आ. शुक्ल रस को लौकिक मानते हैं, अलौकिक नहीं। परन्तु उसे हृदय का धर्म मानकर उसे वैयक्तिक अनुभूतियों से ऊपर उठाकर सामाजिक स्वरूप का प्रतिपादन किया है। इसी पर डॉ. रामाधार शर्मा कहते हैं- "शुक्लजी ने रस को अखंड अनुभूति नहीं माना है, उसका विभाजन और वर्गीकरण किया है, उसकी अनिवार्यतः आनन्दात्मकता पर शंका प्रकट की है और उसे अलौकिक के स्थान पर लौकिक सिद्ध किया है।"17